
इकाई 4 अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि प्रमाण की परिभाषा एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

- 4.0 उद्देश्य
- 4.1 प्रस्तावना
- 4.2 अर्थापत्ति का अर्थ एवं स्वरूप
- 4.3 अर्थापत्ति के भेद
- 4.4 अर्थापत्ति की उपादेयता
- 4.5 अनुपलब्धि का अर्थ एवं स्वरूप
- 4.6 अनुपलब्धि की उपादेयता
- 4.7 सारांश
- 4.8 पारिभाषिक शब्दावली
- 4.9 संस्तुत पुस्तकें
- 4.10 बोधप्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस ईकाई के अध्ययन के पश्चात् हम लोग यह जान सकेंगे

- अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि को स्वतंत्र प्रमाण के रूप में जान सकेंगे।
- अनुपलब्धि का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप को जान सकेंगे।
- अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि की स्वतंत्र प्रमाण के रूप में स्वीकार्यता तथा उसके प्रमाणत्व एवं विश्लेषण एवं उपादेयता को जान सकेंगे।
- भारतीय प्रमाण विवेचन में अर्थापत्ति तथा अनुपलब्धि स्वतन्त्र प्रमाण के रूप में महत्त्व को समझ सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

भारती प्रमाण व्यवस्था में वेदान्त और मीमांसा दर्शन में न्याय द्वारा स्वीकृत प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान तथा शब्द प्रमाण के अतिरिक्त दो और प्रमाणों को स्वीकार किया गया है। जिसे अर्थापत्ति एवं अनुपलब्धि कहते हैं। इसका संक्षिप्त विवेचन उपरोक्त बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है। इस ईकाई का समग्र अध्ययन एवं विश्लेषण अग्रांकित है।

4.2 अर्थापत्ति का अर्थ एवं स्वरूप

सर्वप्रथम यह जानना अनिवार्य है कि— अर्थापत्ति का शाब्दिक अर्थ क्या है? इस शब्द की व्युत्पत्ति कैसे हुई है? अर्थापत्ति शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से होती हैं। प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार— अर्थस्य आपत्तिः यस्मात् अर्थात् अर्थ की आपत्ति जिससे हो, वह अर्थापत्ति है। इसके अनुसार अर्थापत्ति प्रमाण है। द्वितीय व्युत्पत्ति के अनुसार— अर्थस्य

आपत्ति: अर्थापत्ति: अर्थात् अर्थ की आपत्ति अर्थापत्ति है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर अर्थापत्ति को प्रमा माना जाय या प्रमाण माना जाय परन्तु इससे एक विशेष प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है अर्थात् अर्थापत्ति से विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति होती है। विशिष्ट ज्ञान ही विशिष्ट प्रमा है। विशिष्ट ज्ञान को उदाहरण से समझा जा सकता है। “पीनोऽयं देवदत्तः दिवा न भुङ्क्ते” अर्थात् देवदत्त मोटा है परन्तु दिन में भोजन नहीं करता। अतः वह रात में भोजन करता है। यदि देवदत्त दिन में निराहार रहता है, तो वह रात में आहार (भोजन) अवश्य ग्रहण करता है अन्यथा वह मोटा नहीं हो सकता। इस प्रकार मोटे देवदत्त की व्याख्या रात में भोजन के कारण ही सम्भव है।

अर्थापत्ति के दो भाग किये गये हैं— 1. उपपाद्य और 2. उपपादक। उपरोक्त उदाहरण में देवदत्त का मोटा होना उपपाद्य है तथा देवदत्त का रात में भोजना करना उपपादक है। अतः यह कहा जा सकता है कि अर्थापत्ति उपपादक से उपपाद्य का ज्ञान है। इस उदाहरण के अन्तर्गत हमें देवदत्त के मोटा होने की व्याख्या करनी है। इस व्याख्या के अन्तर्गत ‘देवदत्त के मोटा होने में’ हमें यह मानना पड़ेगा कि देवदत्त रात में भोजन करता है। अतः कहा जा सकता है कि— अर्थापत्ति में उपपाद्य और उपपादक दोनों अर्थों की आवश्यकता है। इसका कारण यह है कि जो मनुष्य (देवदत्त) दिन में उपवास रखता है और रात में भी भोजन न करे तो वह स्वस्थ नहीं रह सकता है।

ज्ञात अर्थ की व्याख्या के लिए अज्ञात अर्थ की कल्पना करना अर्थात् जिसकी सहायता के बिना उस ज्ञात अर्थ की उपपत्ति नहीं हो पाती उसे अर्थापत्ति कहते हैं। जैसे किसी देवदत्त नामक व्यक्ति का जीवन प्रमाणान्तर (ज्योतिषादि) से निश्चित है किन्तु घर में जब उसकी उपलब्धि या उपस्थिति नहीं होती है, तब उसके बाहर होने की कल्पना की जाती है। इसी कल्पना को अर्थापत्ति कहते हैं। यहाँ उपपाद्य जीवन करण है और उपपादक बहिर्भाव फल है। जिसके बिना जो अनुपपन्न हो उसे उपपाद्य कहते हैं जैसे— जीवन तथा जिसके अभाव में जिसकी अनुपपत्ति हो उसे उपपादक कहते हैं जैसे— बहिर्भाव। जीवन और बहिर्भाव में प्रमाण—सिद्ध जो परस्पर विरोध है। वह अर्थापत्ति में करण होता है। किसी प्रमाण से ज्ञात हो कि देवदत्त घर में है या देवदत्त घर से बाहर है और किसी अन्य प्रमाण से यह भी ज्ञात हो कि— देवदत्त घर में नहीं है, ऐसी स्थिति में दोनों ही वाक्य परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। इस विशेष या प्रतिघात का समाधान बहिर्भाव की कल्पना से किया जाता है। अतः दो प्रामाणिक अर्थों के बीच अर्थान्तर की कल्पना द्वारा समाहित होने वाला पारस्परिक विरोध अर्थापत्ति का कारण कहलाता है। उस विरोध (प्रतिघात) के समाधान हेतु जो अर्थान्तर कल्पना होती है उसे अर्थापत्ति कहते हैं।

अर्थापत्ति को स्वीकार करने वाले दार्शनिक सम्प्रदाय : मीमांसा और वेदान्त दर्शन में अर्थापत्ति को स्वतंत्र प्रमाण के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। इससे एक पृथक प्रमा की उत्पत्ति होती है। पृथक प्रमा की उत्पत्ति के कारण यह पृथक प्रमाण है। इसके प्राप्त होने वाला ज्ञान विशेष प्रमा या नया ज्ञान है। इसलिए अर्थापत्ति का अन्तर्भाव प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और उपमान में नहीं हो सकता। अतः यह चारों प्रमाणों से भिन्न, पाँचवाँ प्रमाण है, किन्तु सभी दार्शनिक ऐसा नहीं मानते हैं। नैयायिकों के अनुसार अर्थापत्ति का अन्तर्भाव अनुमान में ही हो सकता है। अतः न्याय दर्शन के अनुसार इसे स्वतंत्र एवं पृथक प्रमाण नहीं माना जा सकता है।

शबर के अनुसार, अर्थापत्ति उस अर्थ की कल्पना को कहा जाता है, जिस अर्थ की कल्पना के बिना दृष्ट या श्रुत अर्थ (विषय) की उपपत्ति न होती हो। उदाहरण— यदि देवदत्त जीवित है और वह घर पर नहीं है तो यह कल्पना की जा सकती है कि वह

घर से बाहर होगा। यदि इस कल्पना को अस्वीकार कर दिया जाय तो देवदत्त के जीवित होने और घर पर न रहने के तथ्यों का परस्पर सामंजस्य नहीं हो सकता। कुमारिल भट्ट और प्रभाकर मिश्र के व्याख्या को उसी रूप में स्वीकार किया है। कुमारिल भट्ट और प्रभाकर मिश्र दोनों ने अर्थापत्ति को स्वीकार किया है।

प्रमाण के रूप में अर्थापत्ति

सांख्य दर्शन में अर्थापत्ति को स्वतंत्र प्रमाण के रूप में मान्यता नहीं प्रमाण की है, अपितु अर्थापत्ति को अनुमान प्रमाण के अन्तर्गत रखते हैं। इसी तरह न्याय दर्शन भी अर्थापत्ति को स्वतंत्र प्रमाण नहीं मानना अपितु नैयायिक भी अर्थापत्ति को अनुमान में अन्तर्निहित मानते हैं। मीमांसा एवं वेदांत के अतिरिक्त अन्य दार्शनिक समुदाय ने इसे स्वतंत्र प्रमाण के रूप में मान्यता नहीं प्रदान किया है।

अर्थापत्ति और अनुमान

नैयायिकों ने अर्थापत्ति का अन्तर्भाव अनुमान में किया है तथा इसे स्वतंत्र प्रमाण नहीं माना है। जबकि मीमांसक आचार्य कुमारिल आदि ने अर्थापत्ति का अन्तर्भाव अनुमान में नहीं स्वीकार किया है। इसी का विश्लेषण यहाँ पर किया गया है—

अनुमान में अर्थापत्ति का अन्तर्भाव : न्याय—वैशेषिक, सांख्य और योग दर्शन के आचार्यों ने अर्थापत्ति का अन्तर्भाव अनुमान में किया है किन्तु मीमांसा और वेदान्त अर्थापत्ति को स्वतंत्र प्रमाण मानते हैं। अतः नैयायिकों द्वारा प्रस्तुत तर्क और मीमांसक आचार्यों द्वारा उसका निवारण अंग्रकित है—

नैयायिकों के अनुसार अनुमान में अर्थापत्ति के अन्तर्भाव की प्रक्रिया इस प्रकार हो सकती है—

- क. जीवित चैत्र घर से बाहर है।
 - ख. क्योंकि वह जीवित है और घर पर नहीं है।
 - ग. मेरी तरह।
- यहाँ—

पक्ष— चैत्र जीवित है।

साध्य — चैत्र का बहिर्भाव है।

हेतु — चैत्र का गृहाभाव है।

किन्तु कुमारिल के मतानुसार उपर्युक्त अन्तर्भाव उचित नहीं है। क्योंकि चैत्र का गृहाभाव हेतु की कोटि में नहीं रखा जा सकता। इसका कारण यह है कि हेतु (गृहाभाव) की विद्यमानता पक्ष (चैत्र) में सिद्ध नहीं की जा सकती। यहाँ तो केवल घर दिखायी दे रहा है चैत्र नहीं। चैत्र जीवित है घर पर नहीं है, यह बात तब तक सही नहीं मानी जा सकती, जब तक कि चैत्र को बाहर कहीं देख न लिया जाये। अतः स्पष्ट है कि — “चैत्र घर पर नहीं है”— इस बात को सिद्ध करना है, यह वस्तु पहले दृश्यमान (दिखायी दे रही है) तथा जिससे सिद्ध होना है, वह बाद में दिख रहा है, जबकि अनुमान के अन्तर्गत हेतु पहले आता है तथा साध्य बाद में आता है।

अर्थापत्ति का प्रयोग अर्थापत्ति का समाधान करके मस्तिष्क को हल्का करने के लिए किया जाता है, जबकि अनुमान में अनुपपत्ति की समस्या खड़ी ही नहीं होती।

प्रभाकर का मानना है कि अनुमान और अर्थापत्ति की प्रक्रियायें अलग-अलग हैं। पर्वत पर धूम तब तक नहीं रह सकता, जब तक वहाँ आग विद्यमान न हो। किन्तु अर्थापत्ति में यह क्रम उलट जाता है अर्थात् बहिर्भाव (चैत्र घर से बाहर है) की कल्पना तब तक नहीं की जा सकती, जब तक जीवित होने का बोध न हो जाय। इस प्रकार प्रभाकर ने भी अर्थापत्ति को स्वतंत्र प्रमाण माना तथा अनुमान में इसके अन्तर्भाव का विरोध किया।

कुमारिल एवं प्रभाकर के तर्कों के सन्दर्भ में 'जयंत भट्ट' का यह कथन ध्यान देने योग्य है कि यदि मीमांसक यह मानते हैं कि चैत्र का बहिर्भाव उसके घर पर अनुपस्थिति के बिना असम्भ है तो उनको सीधी तरह से यह भी मानना चाहिए कि यदि जीवित चैत्र घर में नहीं हो तो वह अवश्य ही बाहर कहीं होगा और ऐसा मानना तो अनुमान ही है।

अर्थापत्ति में अनुमान का अन्तर्भाव : नैयायिकों ने अर्थापत्ति को स्वतंत्र प्रमाण के रूप में मान्यता नहीं प्रदान की है। अतः नैयायिकों की दृष्टि में— अर्थापत्ति में अनुमान के अन्तर्भाव का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। किन्तु 'पार्थसारथि मिश्र' एवं धर्मराजाध्वरीन्द्र जैसे कुछ दार्शनिकों ने अर्थापत्ति में अनुमान के अन्तर्भाव का प्रयास किया है। मीमांसक आचार्य पार्थसारथि मिश्र ने यह कहा कि— अनुमान का आधार व्याप्ति है और अर्थापत्ति का आधार अनुपपत्ति है। धर्मराजाध्वरीन्द्र का यह विचार है कि— व्यतिरेक अनुमान का अन्तर्भाव अर्थापत्ति में हो जाता है। किन्तु नैयायिक उपर्युक्त तर्कों के आधार पर अर्थापत्ति में व्यतिरेक अनुमान के अन्तर्भाव को भी स्वीकार नहीं करते।

4.3 अर्थापत्ति के भेद

मीमांसा दर्शन में अर्थापत्ति के दो भेद प्राप्त होते हैं— दृष्टार्थापत्ति एवं श्रुतार्थापत्ति। कुमारिल के अनुसार भाष्य में प्रयुक्त श्रुत और दृष्ट शब्द अर्थापत्ति के दो भेदों के वाचक हैं। किन्तु प्रभाकर का यह कथन है कि श्रुत और दृष्ट एक ही प्रमाण के दो नामान्तर हैं। अतः श्रुतार्थापत्ति एक पृथक भेद नहीं है। धर्मराजाध्वरीन्द्र ने श्रुतार्थापत्ति (शाब्दबोध में अनुपपत्ति) को अर्थापत्ति का एक पृथक भेद तो माना ही है। इसके साथ ही अभिधाननुपपत्ति और अभिहितानुपपत्ति के रूप में उसके दो उपभेदों का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार यदि देखा जाय तो अर्थापत्ति के कुल चार भेद हुए, जिसमें ये दोनों, उपभेद भी शामिल हैं। सर्वप्रथम अर्थापत्ति के दो प्रमुख भेद — 1. दृष्ट, 2. श्रुत का वर्णन अग्रंकित/निम्नलिखित हैं—

1. **दृष्टार्थापत्ति :** यदि कोई व्यक्ति दूर से किसी चमकीली वस्तु को देखता है और उस चमकीली वस्तु वह चाँदी समझ लेता है कि किन्तु जब वह व्यक्ति उस चमकीली वस्तु के समीप पहुँचता है, तब उसे ज्ञात होता है कि यह वस्तु चाँदी नहीं है। इस प्रकार उस व्यक्ति को एक साथ दो विरोधी ज्ञान प्राप्त होते हैं— प्रथम 'यह रजत है' और द्वितीय— 'यह रजत नहीं है।' इन दोनों ज्ञान में से एक अवश्य असत्य होगा। इसमें अनुपपत्ति है। इसका समाधान तभी सम्भव है, जब यह ज्ञात हो जाय कि दूर दिखायी पड़ने वाली वस्तु रजत नहीं थी। यदि चमकीली वस्तु रजत होती तो निकट आने पर रजत ही प्रतीत होती। यहाँ पर 'इदं रजतम्' तथा 'न इदं रजतम्' दोनों तथ्य हैं किन्तु दोनों अनुपपन्न हैं। ये उपपन्न तभी हो सकती है जब प्रथम तथ्य (इदं रजतम्) को असत्य मान लिया जाय। वास्तव में यदि 'इदं रजतम्' (यह रजत है।) सत्य होता तो निकट आने पर भी वह रजत ही प्रतीत होता किन्तु ऐसी प्रतीति नहीं होती। चूँकि अर्थापत्ति प्रमा दृष्ट विषय की व्याख्या के लिए है, अतः यहाँ दृष्टार्थापत्ति है।

2. **श्रुतार्थापत्ति** : श्रुतार्थापत्ति के अन्तर्गत सुने हुए विषय की व्याख्या के लिए उपपादक अर्थ की कल्पना की जाती है। श्रुत विषय सम्बन्धी अनुपपत्ति को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। देवदत्त जीवित है तथा वह घर पर नहीं है, तो यहाँ पर यह कल्पना की जा सकती है कि वह घर के बाहर ही कहीं होगा। इस उदाहरण से दो ज्ञान अनुपपन्न होते हैं— प्रथम देवदत्त जीवित है और द्वितीय—वह घर पर नहीं है। इस अनुपपत्ति के निवारणार्थ 'देवदत्त के घर से बाहर रहने की बात' स्वीकार करना होगा। उपपत्ति इस प्रकार हो सकती है— यदि देवदत्त जीवित है तथा वह घर पर नहीं है, तो निश्चित ही वह घर से बाहर है। इस अनुपपत्ति के निवारणार्थ हमें निश्चित रूप से यह स्वीकार करना होगा कि — देवदत्त जीवित है, तो वह घर पर है या फिर बाहर है। यदि वह (देवदत्त) जीवित है और घर तथा बाहर दोनों जगहों पर नहीं है ऐसा सम्भव नहीं हो सकता है।

महान वेदान्ती धर्म राजाध्वरीन्द्र ने श्रुतार्थापत्ति के दो भेद बताये हैं—

1. अभिधानानुपपत्ति।
2. अभिहितानुपपत्ति।

1. **अभिधानानुपपत्ति** : यदि कोई वक्ता 'द्वारम्' या 'द्वार को' केवल इतना ही शब्द बोलकर रूक जाता है, तो यह कथन स्पष्ट नहीं हो पाता है। इस कथन सम्बन्धी समस्या या अनुपपत्ति को दूर करने हेतु इस शब्द के आगे 'पिथेहि' पद जोड़ना पड़ेगा। तब यह कथन 'द्वारं पिथेहि' अर्थात् दरवाजा बंद कर दो— पूर्ण वाक्य होगा। जब 'द्वारम्' में 'पिथेहि' क्रिया को संयुक्त नहीं किया जायेगा, तो वाक्य अनुपपन्न होगा। अतः यहाँ पर 'पिथेहि' क्रिया का अध्याहार आवश्यक है।
2. **अभिहितानुपपत्ति** : वैदिक वाक्य— "स्वर्गकामो—ज्योतिष्टोमेन यजेत्" अर्थात् स्वर्ग की कामना करने वाला ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ करे। इस वाक्य के अर्थ को समझने हेतु हमें सर्वप्रथम 'अपूर्व' की जानकारी होना आवश्यक है कि 'अपूर्व' क्या है? उपर्युक्त वाक्य की मूल समस्या यह है कि— स्वर्ग प्राप्ति का कारण ज्योतिष्टोम यज्ञ को माना गया है। यज्ञ अभी तथा इसी जीवन काल में सम्पन्न हो रहा है और इस यज्ञ का फल मरने के बाद स्वर्ग में प्राप्त होगा। इस समस्या का निवारण 'अपूर्व' के अन्तर्गत समय आने पर ही फल की प्राप्ति होती है। इस प्रकार 'अपूर्व' के ज्ञान के बिना यह वाक्य (स्वर्गकामो ज्योतिष्टोमेनयजेत्) स्पष्ट नहीं हो सकता। अतः कहा जा सकता है कि अभिहितानुपपत्ति में अर्थ सम्बन्धी कठिनाई है। क्योंकि यदि कोई व्यक्ति कहता है कि— "स्वर्गकामो ज्योतिष्टोमेन यजेत्" तो यहाँ पर श्रोता को 'अपूर्व' नामक एक अदृष्ट अर्थ की कल्पना करनी होगी, अन्यथा इस वैदिक वाक्य का अर्थ स्पष्ट नहीं होगा।

शबर स्वामी ने 'दृष्ट' और 'श्रुत' नामक अर्थापत्ति के भेद को नहीं स्वीकार किया है।

आचार्य कुमारिल शबर स्वामी की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 'दृष्ट' और 'श्रुत' विषयक दो प्रकार की अर्थापत्ति है। इस प्रकार विभिन्न आचार्यों ने अपने-अपने ढंग से अर्थापत्ति की व्याख्या की है।

ज्ञातव्य है कि वेदान्त और मीमांसा दर्शन अर्थापत्ति को एक स्वतंत्र प्रमाण मानते हैं। मीमांसक कहते हैं कि यह सभी प्रमाणों से भिन्न पृथक प्रमाण है। मीमांसकों के अनुसार हमारे कर्ण में अनुच्चारित शब्दों को सुनने (श्रवण करने) की क्षमता का अभाव होता है।

इसलिए श्रुतार्थापत्ति प्रत्यक्ष से भिन्न है। अर्थापत्ति के अन्तर्गत लिंग का निर्धारण नहीं हो सकता, इसलिए यह अनुमान से भिन्न है। उच्चरित होने वाले वाक्यों और अनुच्चरित होने वाले वाक्यों में समानता नहीं पायी जाती है, अतः यह उपमान भी नहीं है। यह शब्द प्रमाण भी नहीं है, क्योंकि शब्द प्रमाण में पूर्ण वक्य का प्रयोग होता है। अर्थापत्ति के अन्तर्गत वाक्य के कुछ अंश श्रुत होते हैं तथा कुछ अंश कल्पित या काल्पनिक होते हैं। अतः इसे शब्द प्रमाण भी नहीं कहा जा सकता है। इसलिए मीमांसकों एवं वेदांतियों ने अर्थापत्ति को स्वतंत्र प्रमाण माना है।

4.4 अर्थापत्ति की उपादेयता

मीमांसकों और अद्वैत वेदांतियों के अनुसार अर्थापत्ति के द्वारा हमें ऐसे तथ्यात्मक ज्ञान की प्राप्ति होती है, जो किन्तु अन्य प्रमाण के द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता है। मीमांसक आचार्य अर्थापत्ति का उपयोग वेद विहित मंत्र की व्याख्या करने में करते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे शब्दों एवं उसके अर्थ को समझने के लिए भी अर्थापत्ति का प्रयोग करते हैं, जिनका उच्चारण नहीं किया जा सकता है। मीमांसक आचार्य अर्थापत्ति के आधार पर ही आत्मा की अमरता में विश्वास करते हैं। इसी प्रकार अद्वैत वेदांतियों का माया-सिद्धांत भी बहुत कुछ अर्थापत्ति पर ही आधारित है।

नैयायिकों ने उपर्युक्त विचार का विरोध किया है। नैयायिकों ने मीमांसक और अद्वैत वेदांतियों के अर्थापत्ति और उपयोगिता पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए कहा है कि— यह उपयोगिता तो अनुमान द्वारा ही सम्पन्ना हो जाती है। अतः अर्थापत्ति का पृथक अस्तित्व मानना उचित नहीं है। नैयायिकों की दृष्टि से जब अनुमान के अन्तर्गत 'केवल व्यतिरेक अनुमान' नामक भेद को स्वीकार करके प्रमाण को सिद्ध किया जा सकता है, तो इसके लिए अलग प्रमाण मानना युक्तिसंगत नहीं है।

उपर्युक्त आलोचना के उत्तरार्थ मीमांसकों, आचार्यों ने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये हैं—

1. अनुमान के अन्तर्गत एक ज्ञात वस्तु के सहारे किसी अन्य अज्ञात वस्तु का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, जबकि अर्थापत्ति के अन्तर्गत तथ्य (गृहाभाव) तो एक ही रहता है। पहले तथ्य अनुपपन्न रहता है और बाद में कल्पना द्वारा उत्पन्न होता है। इसलिए मीमांसक आचार्य अर्थापत्ति को पृथक प्रमाण के रूप में उपयोगी मानते हैं।
2. मीमांसक आचार्यों का मानना है कि— हम अपने पूर्व अनुभव के साथ किसी तथ्य का विरोध दृश्यमान या श्रव्यमान (सुनाई देना) होने पर उसके समाधान हेतु अर्थापत्ति का सहारा लेते हैं, जबकि अनुमान के 'हेतु' के तहत पूर्व अनुभव के साथ पूर्णतः सामंजस्य की स्थिति में हम उसके सहारे किसी अज्ञात वस्तु का अनुमान करते हैं। अतः मीमांसक आचार्यों की दृष्टि में अर्थापत्ति पृथक प्रमाण के रूप में उपयोगी है।
3. मीमांसक आचार्यों का मानना है कि — अर्थापत्ति का मुख्य आधार अनुपपन्नता है, जबकि अनुमान प्रक्रिया अनुपपन्नता पर आधारित नहीं है। इसलिए भी मीमांसक आचार्य अर्थापत्ति को स्वतंत्र प्रमाण के रूप में उपयोगी मानते हैं

4.5 अनुपलब्धि प्रमाण का अर्थ एवं स्वरूप

अनुपलब्धि का शाब्दिक अर्थ है— जो उपलब्ध न हो अर्थात् जिसकी उपलब्धि (ज्ञान) का अभाव हो उसे ही अनुपलब्धि कहते हैं। प्रमाण के रूप में— अनुपलब्धि का प्रमुख कार्य अभाव को ग्रहण करना है। प्रमुख मीमांसक आचार्य 'पार्थसारथी मिश्र' ने 'शास्त्रदीपिका' में उल्लिखित किया है कि— "भट्टमीमांसा" में सर्वप्रथम अनुपलब्धि नामक स्वतंत्र प्रमाण को स्वीकार किया गया जिससे अनुपलब्धि प्रमाण का ज्ञान होता है। कालान्तर में अद्वैत वेदान्त में भी इसे स्वतंत्र प्रमाण माना गया। ज्ञातव्य है कि — मीमांसा और अद्वैत वेदान्त में अनुपलब्धि के अतिरिक्त— प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान और अर्थापत्ति को भी ज्ञान का स्वतन्त्र साधन स्वीकार किया गया है।

भाट्ट मीमांसकों और अद्वैत वेदांतियों का यह कथन है कि किसी स्थान विशेष पर कोई वस्तु विद्यमान न हो तो उस स्थान पर उस वस्तु का अभाव माना जायेगा और उस अभाव का ज्ञान अनुपलब्धि नामक एक पृथक प्रमाण से होगा। जैसे— किसी स्थान पर घट नहीं है तो इस घटाभाव का ग्रहण अनुपलब्धि प्रमाण से ही होता है। अतः अनुपलब्धि एक स्वतन्त्र प्रमाण है। इसके स्वरूप को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है— यदि किसी घट को मैंने देखा है, परन्तु इसी स्थान पर उपलब्धि के सभी साधनों के होते हुए भी इस समय घट नहीं दिखायी देता है, अर्थात् घट की उपलब्धि यथ समय, यथा स्थान पर नहीं होती है, तो हमें अन्ततः यह स्वीकार करना होगा कि इस स्थान पर घटाभाव है और इसका ज्ञान हमें अनुपलब्धि से हो रहा है।

नैयायिक और मीमांसक दोनों ने अभाव को 'पदार्थ' तो माना है किन्तु अनुपलब्धि को प्रमाण रूप में केवल मीमांसक ही मानते हैं अर्थात् मीमांसकों के अनुसार— 'अभाव' पदार्थ और प्रमाण दोनों हैं। आचार्य कुमारिल ने 'श्लोकवार्तिक' में कहा है कि—

**“प्रमाणपंचकं यत्र वस्तुरूपे न ज्ञायते।
वस्तुसत्ताबोधार्थं तत्राभाव प्रमाणता।।”**

अर्थात् अभाव के सन्दर्भ में अन्य पाँच प्रमाण चरितार्थ नहीं हो सकते। अतः उसके ज्ञान के लिए अनुपलब्धि को प्रमाण मानना आवश्यक है। धर्मराजाध्वरीन्द्र के अनुसार ज्ञान रूपी कारण से उत्पन्न न होने वाले अभावानुभव के असाधारण कारण को अनुपलब्धि प्रमाण कहा जाता है। अनुमान आदि से जन्य अतीन्द्रिय अभाव (यथा— अहं पुण्याभाववान् सुखाभावत्वात् : जो इस व्याप्ति ज्ञान पर निर्भर है कि 'यत्र—यत्र सुखाभावः तत्र—तत्र पुण्याभावः) में अतिव्याप्ति के निवारण के लिए लक्षण में— "ज्ञानकरणाजन्यत्व" इस विशेषण का प्रयोग किया गया है। अनुमान व्याप्ति ज्ञान जन्य होता है, जबकि अनुपलब्धि में ऐसा नहीं होता।

धर्मराजाध्वरीन्द्र का यह कथन है कि ईश्वर, काल, अदृष्ट आदि की कारणता तो सभी कार्यों के साथ रहती है। अतः उनका परिहार करने के लिए 'अनुपलब्धि' के लक्षण में 'असाधारण' शब्द का समावेश किया गया है। इसी 'अभाव' की 'स्मृति' में अतिव्याप्ति के निवारण हेतु 'अनुभव' शब्द का प्रयोग किया गया है। धर्म एवं अधर्म जैसी वस्तुओं में प्रत्यक्ष योग्यता नहीं है। अतः उनकी अनुपलब्धि योग्य अनुपलब्धि नहीं कही जा सकती। प्रत्यक्ष योग्य वस्तु के ही अभाव का ज्ञान अनुपलब्धि प्रमाण से होता है, न कि प्रत्यक्ष अयोग्य वस्तु के अभाव का भी ज्ञान। ज्ञान के कारणों के होते हुए भी ज्ञान योग पदार्थ का ज्ञान न होना उस पदार्थ के अभाव के ज्ञान का कारण होता है। अत्यंत दूर स्थित पदार्थ का भी ज्ञान नहीं होता, किन्तु उसका अभाव नहीं माना जा

सकता क्योंकि वह ज्ञान के योग्य ही नहीं है। अतः सिद्ध होता है कि ज्ञान योग्य पदार्थ की अनुपलब्धि ही उस पदार्थ के अभाव को सिद्ध कर सकती है न कि ज्ञान के अयोग्य पदार्थ की अनुपलब्धि।

कुमारिल भट्ट का यह विचार है कि प्रमाण और ज्ञेय वस्तु के स्वभाव में समानता होनी चाहिए। भावात्मक पदार्थों का ज्ञान प्रत्यक्ष आदि भावनात्मक प्रमाणों से और अभावात्मक पदार्थों का ज्ञान अभावात्मक प्रमाण के द्वारा होता है। कुमारिल के अनुसार वस्तुयें सद-असद रूप से दो प्रकार की होती हैं। जयंत भट्ट ने कुमारिल के मत का खंडन किया है।

भारतीय दर्शन में अभाव के स्वरूप को लेकर पर्याप्त मतभेद रहा है। भट्ट मीमांसक और अद्वैत वेदांतियों के अनुसार अभाव एक पदार्थ है और उसका ज्ञान अनुपलब्धि प्रमाण से होता है। प्रभाकर मीमांसक और सांख्य की दृष्टि से सत्ता (भाव) और असत्ता (अभाव) ये एक ही वस्तु के दो रूप हैं। अभाव कोई पदार्थ नहीं है लेकिन उसका ज्ञान प्रत्यक्ष द्वारा हो जाता है। नैयायिक अभाव को एक पदार्थ मानते हैं और नैयायिकों का मानना है कि अभाव का ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण से होता है। वैशेषिक भी अभाव को एक पदार्थ मानते हैं, किन्तु अभाव का ज्ञान अनुमान से होता है। यहाँ पर वैशेषिक, नैयायिकों से भिन्न मत रखते हैं। बौद्ध दार्शनिकों का मानना है कि अभाव कल्पना मात्र है तथा अभाव का ज्ञान अनुमान से ही हो जाता है। यहाँ बौद्धों का मत वैशेषिक दार्शनिकों से साम्य रखता है।

अनुपलब्धि का प्रमाणत्व एवं विश्लेषण : नैयायिक अनुपलब्धि का प्रमाणत्व स्वीकार नहीं करते हैं तथा अनुपलब्धि का अन्तर्भाव प्रत्यक्ष में करते हैं। नैयायिकों का कथन है कि— 'यदि यह घड़ा होता तो भूतल के समान वह दिखायी देता।' इस तर्क द्वारा सहकारी अनुपलब्धि से युक्त प्रत्यक्ष से भूतल में घटाभाव का ज्ञान होता है। अतः पृथक अनुपलब्धि प्रमाण भी आवश्यकता नहीं है। यहाँ पर यह संशय उत्पन्न होता है कि नियमतः इन्द्रियाँ अपने से सम्बद्ध विषय को ही ग्रहण करती हैं। जैसे— त्वक् इन्द्रिय-संयोग-सम्बन्ध से अपने सम्बद्ध विषय (द्रव्य) को ग्रहण करती है। इसी तरह घ्राण समवाय सम्बन्ध से स्वयं से सम्बद्ध गंध का ग्रहण करती है। यहाँ पर चक्षु के साथ अभाव का कोई संशय नहीं है। अतः चक्षु से अभाव का ग्रहण नहीं होता है। सम्बन्ध दो ही होते हैं — संयोग और समवाय। संयोग सम्बन्ध दो द्रव्यों के बीच होता है जबकि अभाव द्रव्य नहीं है। समवाय सम्बन्ध भी दो अयुत्सिद्ध पदार्थों के मध्य होता है, जबकि चक्षु और अभाव का एक दूसरे की अनुपस्थिति में भी विद्यमान रहते हैं।

नैयायिकों ने उपर्युक्त समस्या के समाधान के लिए 'विशेषण-विशेष्य भाव' सम्बन्ध के आधार पर अभाव को प्रत्यक्षगम्य माना। जैसे— 'भूतल घटाभाव से विशिष्ट है' (भूतलं घटाभाववत्) इस कथन में घटाभाव विशेषण और भूतल विशेष्य है तथा घटाभाव भूतल से विशिष्ट है (भूतले घटाभावः)। इस कथन में भूतल विशेषण तथा घटाभाव विशेष्य है। अतः नैयायिकों के अनुसार चक्षु का सम्बन्ध घटाभाव के साथ भूतल के माध्यम से मानने में कोई समस्या नहीं है। अतः इन्द्रियों द्वारा अभाव का ग्रहण किया जा सकता है।

नैयायिकों के 'विशेषण-विशेष्य भाव' पर वैदांतियों ने आपत्ति प्रकट की है। सम्बन्ध वह कहलाता है, जो दो व्यक्तियों पर निर्भर (आश्रित) हो, आश्रयभूत दोनों व्यक्तियों से भिन्न हो और स्वयं एक हो। ये तीनों बातें— 'विशेषण-विशेष्यभाव' में नहीं दृष्टिगत होती हैं। विशेषण केवल विशेषण में पायी जाती हैं और विशेष्य केवल विशेष्य में। अतः

विशेषण-विशेष्यभाव उभयाश्रित नहीं है। विशेषण विशेषण से तथा विशेष्य विशेष्य से पृथक नहीं है। विशेषणविशेष्य रूप सम्बन्ध दोनों से भिन्न एक व्यक्ति रूप भी नहीं है। अतः यह सम्बन्ध नहीं हो सकता। इस प्रकार कहा जा सकता है कि— विशेषण विशेष्यभाव, विशेषण-विशेष्य स्वरूप से भिन्न नहीं है, उभयाश्रित नहीं है तथा एक व्यक्ति रूप भी नहीं है। अतः विचार करने पर तो — विशेषण-विशेष्य भाव सम्बन्ध नहीं है। किन्तु नैयायिकों ने इसे सम्बन्ध का साधर्म्य माना है, जिसे 'उभयनिरूपणीयत्व' (दोनों से बाधित होना) कहते हैं। जिस प्रकार भेरी और दण्ड का संयोग सम्बन्ध भेरी और दण्ड के बिना नहीं जाना जा सकता, उसी प्रकार विशेषणविशेष्यभाव भी दोनों के बिना नहीं जाना जा सकता। अतः इन्हें युगल रूप में ही जाना जा सकता है। इसीलिए इसे 'उपचारवश' सम्बन्ध कहते हैं।

नैयायिकों के अनुसार नियमतः इन्द्रियाँ स्वसम्बद्ध विषयों को ही ग्रहण करती हैं किन्तु यह नियम केवल भाव पदार्थों के लिए है। अभाव का ग्रहण उसके साथ इन्द्रिय का सम्बन्ध हुए बिना विशेषण विशेष्यभाव से हो जाता है।

बौद्धों के अनुसार— विशेषण-विशेष्य भाव को सम्बन्ध नहीं माना जा सकता, क्योंकि बौद्धों की दृष्टि में यह काल्पनिक है। जयंत भट्ट ने बौद्धों द्वारा— 'विशेषण-विशेष्य-भाव' को काल्पनिक मानने का खंडन किया है। जयंत भट्ट का मानना है कि अभाव की वस्तु सत्ता है और 'विशेषण-विशेष्य भाव' द्वारा उसका प्रत्यक्ष होता है। अनुपलब्धि को स्वतंत्र प्रमाण के रूप में मीमांसक और अद्वैत वेदांतियों द्वारा मान्यता प्राप्त है।

4.6 अनुपलब्धि प्रमाण की उपादेयता

न्याय एवं वैशेषिक आदि ने अनुपलब्धि को स्वतंत्र प्रमाण नहीं स्वीकार किया है, किन्तु न्यायशास्त्र में अभाव का व्यापक विश्लेषण किया गया है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रमाण रूप में अनुपलब्धि को न स्वीकारने के बावजूद अभाव के महत्त्व को माना गया है। दार्शनिकों का मानना है कि यदि सामान्य व्यक्ति की दृष्टि से विचार किया जाय तो भाव के साथ अभाव की समस्या सदैव बनी रहती है। वास्तव में यदि अभाव की सत्ता न होती तो लोगों पर इसका प्रभाव नहीं पड़ता। हाँ इतना अवश्य है कि इसके ज्ञान को लेकर भारतीय आचार्यों में मतभेद है। भाट्ट मीमांसकें और वेदांतियों ने अभाव के ज्ञान के लिए ही अनुपलब्धि को स्वतंत्र प्रमाण के रूप में प्रतिपादित किया। किन्तु लोक व्यवहार में नैयायिकों का मत अधिक प्रसिद्ध है। क्योंकि प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुमान और शब्द से भी अभाव का ज्ञान हो सकता, जबकि अधिकांशतः अभाव के ज्ञान हेतु प्रत्यक्ष का सहारा लिया जाता है।

नैयायिकों की दृष्टि में 'विशेषण-विशेष्य-भाव' को एक सम्बन्ध के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, जिससे कि अनुपलब्धि का प्रत्यक्ष प्रमाण में अन्तर्भाव किया जा सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि अनुपलब्धि के प्रमाणत्व को लेकर विवाद होने के बावजूद, 'अभाव' को लेकर भारतीय दर्शन में जो विश्लेषण तथा खण्डन-मण्डन प्रस्तुत किया गया वह इसकी उपादेयता को सिद्ध करता है। अतः प्रमाणित होता है कि भारतीय दर्शन में अनुपलब्धि प्रमाण महत्त्व स्वतः सिद्ध है।

4.7 सारांश

अर्थापत्ति और अनुपलब्धि प्रमाण भारतीय दर्शन में वेदमूलक दर्शनों में मीमांसा और वेदान्त में स्वीकार्य है। हमारे जीवन में बहुत सारे ऐसी घटनाएँ या विचार की वस्तुएँ आती हैं, जिनका हमें केन्द्रीय प्रत्यक्ष नहीं होता, फिर भी उनका अस्तित्व होता है। यदि उनके अस्तित्व को अस्वीकार कर दिया जाय, तो जीवजगत की बहुत सारी व्याख्याएँ नहीं हो पायेंगी। अर्थापत्ति जहां दृष्टकार्य या घटनाओं को देखकर उसके पीछे की अदृष्ट (बिना देखी हुई) कारण का बौद्धिक निर्धारण है, वही अनुपलब्धि प्रमाण द्वारा हम किसी भी वस्तु या घटना के किसी देश और काल में अनुपस्थिति को सिद्ध करते हैं। इस प्रकार से अर्थापत्ति और अनुपलब्धि प्रमाण भारतीय ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र को व्यापकता प्रदान करता है। इन प्रमाणों के ही आधार पर हम आत्मा, ईश्वर या दैवीय सत्ताओं के 0पर विश्वास कर पाते हैं। ये प्रमाण हमारे जीवन में आस्तीकता का प्रवेश कराते हैं।

4.8 पारिभाषिक शब्दावली

4.9 सहायक उपयोगी पाठ्यपुस्तकें

1. चक्रधर विजलवान, न्यायदर्शन, उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखन0, 1999
2. हीरालाल आर शिवहरे, पदार्थ विज्ञान, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
3. डी.एम. दत्ता, 'सिक्स वे ऑफ नोईंग'

4.10 बोध प्रश्न

1. अर्थापत्ति की परिभाषा दीजिए तथा स्वरूप का वर्णन कीजिए।
2. अर्थापत्ति को स्वीकारने वाले दार्शनिक सम्प्रदाय की दृष्टि में अर्थापत्ति का विवेचन कीजिए।
3. अर्थापत्ति के कितने प्रकार हैं? अर्थापत्ति के प्रकार को व्याख्यायिक कीजिए।
4. अनुमान में अर्थापत्ति का अन्तर्भाव कैसे हो सकता है? विश्लेषण कीजिए।
5. अनुपलब्धि प्रमाण की परिभाषा दीजिए तथा इसके स्वरूप का वर्णन कीजिए।
6. अनुपलब्धि के स्वतंत्र प्रमाण के रूप में स्वीकार्यता का विवेचन कीजिए।